

अम्बेडकरवाद और कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में हाल के वर्षों में 'जाति प्रश्न' पर विचार करते हुए और इसके समाधान के नाम पर डा. भीमराव अम्बेडकर के कार्यों और विचारों के प्रति आग्रह बढ़ा है। साथ ही अतीत के कम्युनिस्ट आंदोलन की इस बात के लिए भर्त्सना की जाती है कि उन्होंने जान बूझ कर 'जाति प्रश्न' की अवहेलना की और यहां तक कि डा. अम्बेडकर के प्रति उपेक्षा का रुख अपनाया और इस सब में ज्यादा यदि किसी चीज ने भूमिका निभाई थी तो वह कम्युनिस्ट आंदोलन के नेतृत्व में काबिज ब्राह्मणों ने।

कोई कह सकता है कि मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद के संलयन करने वाले शरद पाटिल का यह असर है कि देश का कम्युनिस्ट आंदोलन जाति प्रश्न के प्रति संवेदनशील हुआ है। सत्तर के दशक में शरद पाटिल ने मार्क्सवाद-फुलेवाद-अम्बेडकरवाद (मा.फू.आ.) की बातें कही थीं। उस वक्त कई बुद्धिजीवियों ने भले ही उनके विचारों को गम्भीरता से लिया हो, वह भी खासकर दलित वाम बुद्धिजीवियों ने, परन्तु कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन ने उसके प्रति घोर तिरस्कार का रुख ही अपनाया था। उनकी सत्यशोधक कम्युनिस्ट पार्टी को एक निम्न बुर्जुआ पार्टी मानकर कम्युनिस्ट आंदोलन में एक गैर सर्वहारा प्रवृत्ति के रूप में देखा गया था। शरद पाटिल तो अब नहीं रहे परन्तु उनके खुले-छिपे अनुयायी भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में कई जगह प्रकट हो चुके हैं।

वर्ग और जाति के अन्तरसम्बन्ध सत्तर के दशक से अबूझ पहली बनाकर पेश किये जाते रहे हैं और इस अन्तर सम्बन्ध की व्याख्या में मार्क्सवाद की आधार और अधिरचना की सुस्पष्ट समझदारी को भी धूमिल कर दिया गया है। इससे आगे बढ़कर ऐसी प्रस्थापनाएं पेश की जाती रही हैं जिनका निहितार्थ यह निकलता है कि पूंजीवाद पूर्व की सामाजिक और आर्थिक संरचनाएं ऐसी हैं कि पूंजी उनका कुछ बिगाड़ नहीं पाती है। अधिक से अधिक वह इन संरचनाओं को बनाये रखने में ही अपने हित देखती है। इस बात को भी भुला दिया जाता है कि भारतीय समाज के उत्पादन सम्बन्धों को ही नहीं बल्कि अधिरचना के हर अंग-उपांग को पूंजी ने अपने रंग में रंग डाला है।

मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद का संलयन अथवा मिश्रण तैयार करने वाले कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शायद भूल चुके हैं कि विचारधारा का उनके लिए क्या महत्व होना चाहिए। देश में जब दक्षिणपंथ का बोलबाला हो उस वक्त विचारधारा के मामले में कोई भी रियायत देने अथवा लेने का अर्थ है देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में नये भटकाव व बिखराव को जन्म देना। और यह बात सच है कि जब से मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद का मेल कराने की कोशिशें तेज हुई हैं तब से इस कवायद के कारण भी काफी विचारधारात्मक विभ्रम फैला है। सार संग्रहवादी प्रवृत्तियां बढ़ी हैं और इस वजह से कई कम्युनिस्ट गुप्तों को बाजीगरी दिखानी पड़ी है। उन्हें एक ही समय अम्बेडकर को सही-गलत कहना पड़ा है। कोई यह कहने को बाध्य हुआ कि अम्बेडकर तब तक सही थे और उसके बाद गलत। और कोई-कोई तो अम्बेडकर के चरित्र में सुसंगता के अभाव का कारण कम्युनिस्ट आंदोलन की कमजोरी में ढूँढने लगता है।

भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन में जाति के प्रश्न के नाम पर किस-किस तरह के विभ्रम फैले हुए हैं इसकी चर्चा इस पत्रिका में पूर्व में छपे दो लेख 'जाति प्रश्न के बारे में' (लाल सलाम अंक-8 वर्ष 2004) तथा 'जाति, जमीन और जनवाद' (लाल सलाम अंक-25, वर्ष 2012) में की गयी थी। बातों में दोहराव न हो इससे बचने यहां भरसक कोशिश की गयी है। तभी बातों को दोहराया गया है जब अति आवश्यक जान पड़ा है। इस लेख में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति अथवा विकास और वर्तमान समय में उसके स्वरूप के बारे में नयी टिप्पणियां नहीं की गयी हैं। इस मामले में हम अपनी अवस्थिति पूर्व में ही रख चुके हैं। अतः इस विषय में दिलचस्पी रखने वाले पाठक ला.स. के उपरोक्त लेखों तथा अन्य सम्बन्धित दस्तावेजों को देख सकते हैं।

यहां एक मजेदार बात है कि अम्बेडकरवाद और मार्क्सवाद का विचित्र घोल तैयार करने वाले बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन अम्बेडकरवाद की क्या आलोचना करता रहा है। वे बखूबी जानते हैं कि क्यों अम्बेडकर का अपने जीते जी मार्क्सवाद से छत्तीस का आंकड़ा रहा है। यह सर्वविदित है कि अम्बेडकर मार्क्सवाद को 'सुअरों का दर्शन' कहते रहे हैं।

इस लेख की मजबूरी है कि इसे वे बातें प्रस्तुत करनी पड़ेंगी जिनकी किसी परिपक्व कम्युनिस्ट आंदोलन में कहने की किंचित भी आवश्यकता न होती।

अम्बेडकर का जन्म औपनिवेशिक-अर्द्ध सामन्ती भारत में हुआ था। और उनका पूरा जीवन एक ऐसे भारत में गुजरा जो साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रहा था। जब उनकी मृत्यु हुयी तो भारत ब्रिटिश उपनिवेश नहीं रह गया था परन्तु उसने साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेदन नहीं किया था। भारत के नये शासकों-पूंजीपतियों और भूस्वामियों-ने शनैः शनैः सुधारों के जरिये एक

अर्द्ध सामन्ती समाज को पूंजीवादी समाज में बदलने का रास्ता तय किया हुआ था। और भारत इस तरह से पूंजीवादी समाज में तब्दील हो इसकी, नीतियों व रास्ते को तय करने में अम्बेडकर ने अपनी योग्यता व क्षमता का पूरा परिचय दिया। वे पूंजीवादी संविधान के ऐसे निर्माता थे जिसके लिए उन्हें कदम-कदम पर अपने आदर्शवादी विचारों से व्यावहारिक समझौता करना पड़ा था। सुधार, समझौते से भरी उनकी राह के किनारे क्षोभ व असंतोष के वृक्ष लगे हुए थे परन्तु इस राह और उसकी मंजिल पर वे वैसे ही यकीन रखते थे जैसे उस समय के अन्य समकालीन नायक रखते थे। 'मूक नायक' और 'वाचाल नायक' एक ही राह के राही थे।

अम्बेडकर उस सामाजिक-आर्थिक संरचना की पैदाइश थे जिसकी नींव ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों ने सामन्ती भारत में डाली थी। उनके पिता ब्रिटिश इण्डियन आर्मी में सूबेदार थे और उनके दादा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना में कार्यरत रहे थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा सही ढंग से इसलिए सम्पन्न हो सकी क्योंकि उनकी प्रतिभा को पहचान कर एक रजवाड़े ने उनकी सहायता की थी। अम्बेडकर ने सं.रा. अमेरिका की कोलंबिया यूनिवर्सिटी और लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। अम्बेडकर को एक जानी-मानी हस्ती बनाने में इस उच्च शिक्षा का बहुत योगदान रहा है।

अम्बेडकर के राजनैतिक-आर्थिक विचारों में अमेरिकी प्रवास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अम्बेडकर के विचारों में अमेरिकी व्यावहारिकतावादी दार्शनिक जान डेवी (John Dewey) (1859-1952) का व्यापक प्रभाव रहा है। डेवी के अलावा वे मशहूर अंग्रेज राजनीतिज्ञ एडमण्ड बर्क (Edmund Burke) (1729-1797) से भी खासे प्रभावित थे। अम्बेडकर के मशहूर भाषण (जो दिया नहीं जा सका परन्तु बाद में निबंध के रूप में प्रकाशित हुआ) 'जाति का उन्मूलन' (Annihilation of Caste) में डेवी और बर्क के विचारों का काफी प्रयोग हुआ है। अम्बेडकर की अन्य राजनैतिक व आर्थिक रचनाओं में भी डेवी के विचारों के प्रभाव को साफ तौर पर देखा जा सकता है।

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में जो समूह अम्बेडकर के योगदान के प्रशंसक हैं वे गाहे-बगाहे इस बात की चर्चा तो करते हैं कि अम्बेडकर के विचारों में जॉन डेवी के व्यावहारिकतावादी (Pragmatism) दर्शन का असर था परन्तु इस बात की छानबीन करने की जहमत नहीं उठायी जाती है कि व्यावहारिकतावाद क्यों कर एक बुर्जुआ विचारधारा है। अम्बेडकर के साथ मार्क्सवाद के संलयन का कोई भी प्रयास हो अथवा उसके प्रति सराहना का भाव ही हो, यह कम्युनिस्ट गुप्तों में बुर्जुआ विचारों के प्रचार-प्रसार का जरिया स्वाभाविक तौर पर ही बन जाता है। ऐसे में यह बेहद आवश्यक हो जाता है कि इस बात की संक्षेप में चर्चा कर ली जाय कि व्यावहारिकतावाद क्या है? जान डेवी या एडमण्ड बर्क की इतिहास में क्या भूमिका बनती है? क्या उनके विचारों में ऐसी कोई बातें बनती हैं जिनसे भारत का शोषित-उत्पीड़ित सर्वहारा कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकता है?

व्यावहारिकतावाद एक ऐसी पूंजीवादी विचारधारा है जिसका जन्म व विकास उन्नीसवीं सदी के अंतिम व बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में सं.रा. अमेरिका में हुआ। यह वही काल है जब साम्राज्यवाद (पूंजीवाद की उच्चतम अवस्था) का जन्म और विकास हो रहा था। साथ ही यह वही काल है जब सं.रा. अमेरिका में मजदूर वर्ग का आंदोलन तेजी से अपना प्रभाव बना रहा था। अमेरिकी साम्राज्यवाद इस दौरान क्रमशः शक्तिशाली होता जा रहा था और कई पुरानी साम्राज्यवादी ताकतों को पीछे छोड़ चुका था। ऐसे समय में व्यावहारिकतावाद का दर्शन अमेरिका के बुर्जुआ वर्ग के बीच अपना विशेष स्थान बना चुका था। उसका प्रभाव व्यापक था। उसने जीवन के हर क्षेत्र में अपनी पैठ बनायी, शिक्षा, कानून, राजनीति, मनोविज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र यानी हर जगह इस विचारधारा के प्रभाव में विशिष्ट सिद्धान्त और उपकरण विकसित किये गये।

व्यावहारिकतावाद के अनुसार किसी सिद्धान्त, विचार, तरीके आदि का मूल्य क्या है यह उसके व्यावहारिक उपयोग के जरिये निर्धारित होता है। यदि उसका व्यावहारिक उपयोग नहीं है तो वह निरर्थक है। यहां व्यावहारिक उपयोग से तात्पर्य व्यक्तियों के आत्मगत हितों की पूर्ति से है। यहां व्यवहार की कसौटी में कस कर वस्तुगत सत्य को हासिल करने का लक्ष्य नहीं है। यहां वस्तुगत सत्य (या यथार्थ) और आत्मगत हितों की पूर्ति करने वाला व्यवहार (या अनुभव) एक ही चीज हैं। खुले शब्दों में जो व्यक्ति (पूंजीपति) के व्यावहारिक उपयोग में आये वही सिद्धान्त, विचार, विधि मूल्यवान है अन्य सब निरर्थक हैं त्याज्य हैं।

व्यावहारिकतावाद में तर्कवाद या बुद्धिवाद के स्थान पर अनुभववाद का बोलबाला है। उनके यहां जो अनुभव है वही वस्तुगत यथार्थ और जो वस्तुगत यथार्थ है वह अनुभव होना चाहिए। यहां चिंतन करने वाले और जिसके बारे में चिंतन किया जा रहा है (अर्थात् विषयी और विषय) का फर्क केवल व्यवहार या अनुभव के दायरे में है।

सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में व्यावहारिकतावादियों के विचारों में व्यापक मत भिन्नता है। विलियम जेम्स "असाधारण व्यक्तियों" की पूजा के तो जॉन डेवी बुर्जुआ जनवाद (और उसमें भी औद्योगिक जनवाद) के समर्थक हैं। फ्रे. शिलर तो नस्लवाद और फासिज्म की वकालत तक करने लगते हैं। इस तरह की मतभिन्नता बाद के व्यावहारिकतावादियों में भी पायी जाती है परन्तु मार्क्सवाद और कम्युनिज्म के विरोध को लेकर सारे व्यावहारिकतावादियों में मतैक्य है। इस मामले में ये सभी यथास्थितिवादी और पूंजीवादी व्यवस्था के पैरोकार थे।

डा. भीमराव अम्बेडकर के शिक्षक जॉन डेवी व्यावहारिकतावादियों में सबसे चर्चित व प्रभावशाली दार्शनिक थे। उन्होंने सं.रा. अमेरिका में दर्शन, समाज, मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव डाला परन्तु उनका सबसे ज्यादा प्रभाव शिक्षा शास्त्र में पड़ा। शिक्षकों की पीढ़ियां दर पीढ़ियां जॉन डेवी के विचारों से पल के बड़ी हुई हैं। सं.रा. अमेरिका सहित पूरी पूंजीवादी दुनिया में डेवी के "शिक्षकों की

शिक्षा” के सम्बन्ध में विचार लम्बे अर्से से छाये रहे हैं। डेवी के अनुसार शिक्षा प्रणाली “प्रयोगात्मक विधि” से ओतप्रोत होनी चाहिए जिसका लक्ष्य व्यक्तिगत पहल और उद्यम का विकास है और ये दोनों चीजें “मनुष्य के स्वभाव” में अंतर्निहित हैं।

जॉन डेवी अपने दर्शन को व्यावहारिकतावाद के स्थान पर “करणवाद” (Instrumentalism) की संज्ञा देते थे। बुर्जुआ जनवाद के वे प्रबल समर्थक थे। बुर्जुआ उदारतावाद और व्यक्तिवाद के पैरोकार जॉन डेवी विद्यालय और नागरिक समाज (Civil Society) को जनवाद के लिए दो आवश्यक तत्व मानते थे। बुर्जुआ जनवाद उनके लिए मानवता का परम आदर्श होना चाहिये।

जान डेवी की ख्याति एक अन्य वजह से भी है। 1937 में मैक्सिको में डेवी कमीशन की स्थापना की गयी थी जिसका लक्ष्य लियोन ट्रॉट्स्की पर सोवियत संघ में समाजवादी सत्ता के खिलाफ रचे गये षड्यंत्र व अन्य अपराधों की जांच करना था। इस कमीशन ने ट्रॉट्स्की को निरअपराध घोषित कर महान सर्वहारा नेता जोसेफ स्टालिन को ही दोषी ठहरा दिया था। ट्रॉट्स्की की संशोधनवादी विचारधारा और सोवियत सत्ता के खिलाफ घृणित षड्यंत्र से पूरा कम्युनिस्ट आंदोलन परिचित रहा है। जॉन डेवी ने भले ही कितना ही बुर्जुआ न्याय का खेल खेला हो परन्तु वे कम्युनिज्म से अपने स्थायी विरोध को नहीं छुपा सकते थे। वे समाजवादी क्रांति, वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त और साम्यवाद के कट्टर विरोधी थे। वर्ग सहयोग, शैक्षिक सुधार आदि वे तरीके थे जिससे वे समाज को बेहतर बना सकते थे। बाद के समय में वे औद्योगिक जनवाद (Industrial Democracy) के समर्थक बन गये थे। 1939 में वे ‘लीग फॉर इण्डस्ट्रीयल डेमोक्रेसी’ के अध्यक्ष चुने गये थे। इस लीग का घोषित उद्देश्य कालेज के विद्यार्थियों को मजदूर आंदोलन से परिचित कराना था। वास्तविक तौर पर यह उनके वर्ग सहयोग के बुर्जुआ विचारों को फैलाने का तरीका था ताकि दूसरे विश्व युद्ध के समय छात्रों-युवाओं में वैज्ञानिक समाजवाद का विचार जड़ न जमा ले। 1950 में तो उन्होंने सी.आई.ए. द्वारा वित्त पोषित घोर कम्युनिस्ट विरोधी संगठन ‘कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम’ की अध्यक्षता भी की थी। पचास के दशक में इस संगठन ने स्टालिन, कम्युनिज्म और सोवियत सत्ता के खिलाफ खूब दुष्प्रचार किया था।

जॉन डेवी की तरह एडमण्ड बर्क भी अपने युग में क्रांति के विरोधी थे। एडमण्ड बर्क ने 1789 की महान फ्रांसिसी क्रांति का विरोध किया था। एडमण्ड बर्क की इस समय लिखी गयी रचनाओं ने जर्मनी और फ्रांस के प्रतिक्रांतिकारियों को काफी प्रेरित किया। ब्रिटेन में अपने समय में उन्होंने कुछ शर्तों के साथ ही संसदीय व्यवस्था में सुधारों का समर्थन किया था। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की पकड़ को मजबूत और दीर्घकालिक बनाने के लिए उन्होंने कई सुझाव पेश किये जिसमें ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन के स्थान पर एक स्वतंत्र कमिश्नर के शासन की वकालत की गयी थी। ‘जाति के उन्मूलन’ नामक अपने भाषण में अम्बेडकर ने एडमण्ड बर्क के जिन विचारों को उद्धृत किया है उससे भी उनके प्रतिक्रियावादी विचारों की झलक मिल जाती है। अम्बेडकर ने बर्क के वक्तव्य के एक हिस्से को ही उद्धृत किया था, हम इसे यहां दे रहे हैं,

“सच्चा धर्म समाज की नींव है जिसके आधार पर सकल सच्ची नागरिक सरकार टिकी होती है और जिसकी शक्ति के जरिये वह अपना प्राधिकार, कानून अपना प्रभाव और दोनों ही अपनी वैधता हासिल करते हैं। यदि एक बार अवमानना द्वारा संशय पैदा कर दिया गया तो पूरा ढांचा स्थायी या अन्तिम नहीं रह सकता।” (बी.आर. अम्बेडकर द्वारा उद्धृत, पेज-307 Annihilation of cast नवयान पब्लिकेशन, अनुवाद हमारा)

अम्बेडकर ने डेवी तथा बर्क की तरह अपने युग में होने वाली क्रांतियों के प्रति उपेक्षा और घृणा का रुख ही अपनाया। क्रांति उनके लिए “व्यवहारिक प्रश्न” नहीं था। वे अधिक से अधिक स्थापित व्यवस्था के भीतर कुछ सुधारों के जरिये समाज खासकर दलितों का उत्थान देखते हैं। व्यावहारिकतावाद के दर्शन का ही प्रभाव था कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा अपनी औपनिवेशिक व्यवस्था को दीर्घकालिक बनाने के लिए किये जाने वाले प्रयासों में उनके साथ हो गये थे। यह कम हैरान करने वाली बात नहीं है कि वे राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई से लम्बे समय तक अलग ही रहे। उनके लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद दलितों के लिए एक वरदान था। जब पूरा देश साइमन कमिश्नर के विरोध में लाठी गोली खा रहा था उस वक्त वे इस कमिश्नर की सिफारिशों में उसके एकमात्र भारतीय सदस्य के बतौर योगदान दे रहे थे। उनके लिए आयोग, विधान परिषद की सदस्यता, संविधान सभा की मसौदा समिति की अध्यक्षता, शिक्षा, आरक्षण व सुरक्षित सीटों का प्रावधान और यहां तक कि तथाकथित वर्गीय चरित्र से मुक्त राज्य आदि सभी ऐसे उपकरण (Instruments) थे जिनके जरिये वे अपने व्यावहारिक अभीष्ट को हासिल करना चाहते थे। अमेरिकी साम्राज्यवाद की गोद में पले-बढ़े जॉन डेवी यदि योग्य शिक्षक थे तो डा. भीमराव अम्बेडकर उनके योग्य शिष्य थे। उन्होंने जॉन डेवी के दर्शन और शिक्षाओं का भारतीय संदर्भ में बेहतरनी इस्तेमाल किया था।

अपने धार्मिक विचारों के संदर्भ में वे एडमण्ड बर्क के साथ खड़े थे। धर्म उनके लिए भी समाज की नींव था। पहले-पहल उन्होंने हिंदू धर्म में व्यापक सुधार के लिए कई “उपकरण” सुझाये परन्तु बाद में वे निराश होकर बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हुए। बौद्ध धर्म के महिमामण्डन में उन्होंने बौद्ध धर्म के सनातन अनुयायियों को भी बहुत पीछे छोड़ दिया था। यद्यपि बौद्ध धर्म निरीश्वरवादी था परन्तु बाद के समय में महात्मा बुद्ध के बारे में पौराणिक व दन्त कथाओं में उन्हें ईश्वर घोषित कर दिया गया था। अम्बेडकर ने अपनी रचनाओं में इन पौराणिक कथाओं को युगसत्य का दर्जा दे दिया। असल में वे ऐसे समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते थे जहां धर्म का कोई स्थान न हो।

अम्बेडकर क्यों कम्युनिज्म को ‘सुअरों का दर्शन’ कहते थे, यह उनके धर्म, अध्यात्म सम्बन्धी बातों से उजागर हो जाता है। तेलुगू लेखिका रंगानायकम्मा ने अपनी पुस्तक “‘जाति’ के समाधान के लिए मार्क्स जरूरी हैं” में अम्बेडकर के विचारों की अच्छी चीर

फाड़ की है। उन्होंने अम्बेडकर द्वारा बौद्ध धर्म के बारे में गढ़े गये मिथकों की तार्किक आलोचना की है। अपने चुभते सवालों से उनके पाखण्ड को एकदम उजागर कर दिया है।

धर्म, राज्य, निजी सम्पत्ति आदि के बारे में मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों के सिद्धान्त क्या हैं इसे शायद ही हमारे देश के कम्युनिस्ट आंदोलन में किसी को बताने की आवश्यकता हो। और जो लोग अम्बेडकरवाद और मार्क्सवाद का मेल कराना चाहते हैं वे वास्तव में इनके बारे में एकदम व्यावहारिक चुप्पी साध लेते हैं। वे वस्तुतः इस संदर्भ में चाहे-अनचाहे अम्बेडकर के विचारों को प्रश्रय देने लगते हैं। वैचारिक विभ्रम फैलाते हैं। यह व्यावहारिकतावाद तो हो सकता है परन्तु यह मार्क्सवाद को तिलांजलि देना है।

अम्बेडकर के जाति व हिंदू विरोधी भूमिका को सामन्तवाद विरोधी संघर्षों के हिस्से के बतौर संज्ञान में लेने की आवश्यकता है। उन्होंने 'जाति का उन्मूलन' नामक अपने भाषण में जाति व्यवस्था के सताये लोगों की पीड़ा का अच्छा खुलासा किया है। उन्होंने जाति व्यवस्था के धार्मिक आधार पर अच्छी चोट की है। यह काम अपने जीवन पर्यन्त करते रहे परन्तु उनकी जाति व्यवस्था के जन्म व विकास सम्बन्धी धारणाएं एकदम गलत हैं। उनकी भाववादी पहुंच उन्हें सही और वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालने ही नहीं देती। जाति व्यवस्था के उत्पन्न होने की भौतिक जमीन क्या है और कैसे उस पर निर्णायक प्रहार किये बगैर जाति व्यवस्था का उन्मूलन नहीं किया जा सकता है, इसे समझने में वे असमर्थ रहे। उनका व्यावहारिकतावाद उन्हें सुधारों और खासकर संवैधानिक सुधारों और इन्हें लागू करने में राज्य की सक्रियता और पहल कदमी की मांग तक ही ले जा सकता था।

भारत के दलित आंदोलन में अम्बेडकर के व्यावहारिकतावादी दर्शन और पहुंच ने भारत के उभरते दलित बुर्जुआ और निम्न बुर्जुआ वर्ग की खूब सेवा की। दलित पार्टियों, बुद्धिजीवियों और नाना नामधारी संगठनों को अम्बेडकरवाद ने ऐसे वैचारिक और व्यावहारिक उपकरण दिये जिसके जरिये वे एक सामाजिक शक्ति में तब्दील हो सके। बाद के समय में इस व्यावहारिकतावाद ने अवसरवाद के रूप में अपनी यात्रा पूरी कर ली। कांशीराम, मायावती, रामविलास पासवान, उदित राज व रामदास अठावले आदि ने सत्ता की सीढ़ी चढ़ने के हर अवसर का लाभ उठाने को ही अपनी विचारधारा, रणनीति और रणकौशल बना लिया। इनके यहां दलितों की गोलबंदी सत्ता में हिस्सेदारी का एक उपकरण बन कर रह गयी।

अम्बेडकर एक प्रशिक्षित पूंजीवादी अर्थशास्त्री भी थे। उनके आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धित विचार राजकीय समाजवाद से होते हुए अंत में जान डेवी के औद्योगिक जनवाद में पहुंच जाते हैं। उनके राजकीय समाजवाद में समाजवाद जैसी कोई चीज नहीं है। वह वस्तुतः निजी सम्पत्ति पर आधारित उत्पादन सम्बन्धों को बदले बगैर राज्य के उपकरण के जरिये दलित बुर्जुआ और निम्न बुर्जुआ के जन्म और विकास की परियोजना है। बाद के समय में उन्होंने तीव्र औद्योगीकरण को समाधान के तौर पर देखा। पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को बनाये रखने वाले उनके समाजवाद से आशा पालना सर्वहारा वर्ग की आंखों में धूल झोंकने के समान है क्योंकि नई आर्थिक नीतियों के दौर में राजकीय समाजवाद अव्यवहारिक है। इसलिए विकास, जिसे अम्बेडकर की भाषा में तीव्र औद्योगीकरण कहा जा सकता है, की नीतियां अपना ही व्यावहारिकता है। दलित राजनैतिक नेताओं व पार्टियों की ओर से नई आर्थिक नीतियों का रस्मी विरोध भी नहीं हुआ।

यहां एक प्रश्न यह उठता है कि दलित समुदाय में अम्बेडकर की प्रतिष्ठा के वस्तुगत और आत्मगत कारण क्या हैं?

भारत में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों ने कई दशक पूर्व ही पूर्व पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों पर बढ़त हासिल कर ली थी। और आज पूर्व पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध मात्र अवशेष रह गये हैं। पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों ने पूर्व पूंजीवादी सम्बन्धों पर वरीयता एक लम्बे काल खण्ड में पायी है। इसका परिणाम यह निकला जाति व्यवस्था का भौतिक आधार इस दौरान क्रमशः नष्ट होने लगा। जातिगत पेशे, जजमानी प्रथा आदि क्रमशः कमजोर पड़ते चले गये। इस सब में जहां पूंजी के अपने चरित्र और मैकेनिज्म की प्रमुख भूमिका थी वहीं पूंजीवादी राज्य ने पूर्व पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को नष्ट करने के लिए सुधारों के जरिये हस्तक्षेप भी किया था। (वैसे इस प्रक्रिया की शुरुआत ब्रिटिश शासकों के जमाने में ही हो गयी थी जो आजादी के बाद अपनी परिणति तक पहुंची)। शिक्षा और सरकारी-सार्वजनिक क्षेत्र में आरक्षण, राजनीतिक व्यवस्था में सुरक्षित सीटें आदि आदि ने भी पूर्व पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को कमजोर करने में विशेष भूमिका निभायी।

पूर्व पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के बिखराव के साथ पूरे देश में नये वर्ग अस्तित्व में आये। दलित, आदिवासियों, पिछड़ों आदि के बीच से जहां एक अल्प हिस्सा पूंजीपति व निम्न पूंजीपति वर्ग में समाहित हुआ वहीं शेष विशाल हिस्सा सर्वहारा व अर्द्ध सर्वहारा की पांतों में धकेला गया। पुराने वर्गीय सम्बन्धों के टूटने और नये वर्गीय सम्बन्धों के उदय ने पूरे देश का सामाजिक जीवन बदल डाला। जातिगत उत्पीड़न, अपमान की पुरानी जमीन कमजोर पड़ने लगी और दलित-उत्पीड़ित जातियां राजनैतिक-सामाजिक रूप से गोलबंद होकर मुखर हो गयीं। जाति व्यवस्था का दार्शनिक, वैचारिक आधार पूरे तौर से चरमरा गया।

दलितों की बढ़ती मुखरता और एकजुटता के साथ नयी वर्गीय हैसियत ने वर्चस्वशाली जातियों के दबदबे को नये ढंग से चुनौती दे डाली। हाल के दशकों में महाराष्ट्र, तमिलनाडु, हरियाणा, पंजाब, बिहार आदि राज्यों में दलित अत्याचार की घटनाओं को पुराने समय के उत्पादन व सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर सही व ठीक ढंग से नहीं समझा जा सकता है। इन घटनाओं के सही कारणों को जैसे ही तलाश जाता है वैसे ही नया सामाजिक यथार्थ सतह पर आ जाता है।

नया पैदा हुआ दलित पूंजीपति और निम्न पूंजीपति वर्ग अपने सामाजिक उत्थान के वास्तविक कारणों को अपनी वर्गीय दृष्टि और भाववादी सोच के कारण ठीक ढंग से समझ ही नहीं सकता है। इसके लिए मार्क्सवादी दर्शन और प्रणाली आवश्यक है। अम्बेडकर की

प्रतिष्ठा का वस्तुगत कारण इस वर्ग के उत्पन्न और विकसित होने में है। सरकारी, सार्वजनिक क्षेत्र में नौकरियां पाने वाले जीवन पर्यन्त अम्बेडकर के व्यक्तिगत तौर पर शुक्रगुजार रहते हैं। वे समझते हैं यदि अम्बेडकर नहीं होते तो उन्हें वह हासिल नहीं हो सकता था जो हासिल हुआ। व्यावहारिकतावाद या करणवाद के बारे में एक भी शब्द सुने बगैर वे स्वाभाविक तौर पर इस विचारधारा और चिंतन प्रणाली का वाहक बन जाते हैं।

भारत के शासक वर्ग ने भारत के संविधान के निर्माण के बारे में ढेरों मिथक गढ़े हैं और स्वयं अपने जीवनकाल में अम्बेडकर ने भी इन मिथकों के निर्माण में अपनी विशिष्ट भूमिका निभायी। अम्बेडकर की यह छवि भारत के शासक वर्ग के लिए बेहद उपयोगी रही। दलित बुर्जुआ व निम्न बुर्जुआ पार्टियों ने भी अम्बेडकर के बारे में दैवीय छवि गढ़ी। वे दलित मुक्ति के एक प्रतीक बन गये। ऐसे प्रतीक कि जहां भी दलितों को अपनी अस्मिता का बोध हुआ वहां उनकी मूर्ति की बस स्थापना ही इसकी खुली घोषणा बन गयी। जहां भी वे राजनीतिक, सामाजिक रूप से जागृत हुए वहां अम्बेडकर उनके नायक बन गये। उत्पीड़ित, शोषित, दलित गरीबों व सर्वहारा को इस बात का कतई बोध नहीं था कि अम्बेडकर उसके नहीं दलित बुर्जुआ व निम्न बुर्जुआ वर्ग के नायक थे। अम्बेडकर के बारे में यह बात और जोड़ी जा सकती है कि वे आमतौर पर भारत के बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि थे लेकिन खासतौर पर वे भारत के दलित बुर्जुआ वर्ग के सच्चे और सबसे बड़े प्रतिनिधि थे। उनकी खासियत यह मानी जा सकती है कि उन्होंने दलित बुर्जुआ वर्ग के हितों की एक ऐसी बुनियाद रखी जिस पर आगे चल कर दलित व निम्न बुर्जुआ क्रमशः प्रभावशाली भूमिका में आता गया। उनके अथक प्रयासों का ही नतीजा था कि दलित समुदाय का एक हिस्सा बुर्जुआ व निम्न बुर्जुआ पातों में अपनी जगह बन सका। उनके खासतौर पर किये गये इन कार्यों ने भारत के बुर्जुआ वर्ग के आधार व प्रभाव को काफी विस्तृत किया। दलित समुदाय से कई व्यक्तियों को उसने अपनी पातों में आत्मसात करने के लिए अम्बेडकर के द्वारा प्रस्तावित सुधारों और प्रणाली को अपना लिया क्योंकि इसमें उसके अपने दीर्घकालिक हित छुपे हुए थे। उसे देशव्यापी आधार प्राप्त होता था। अम्बेडकर की जगह सर्वहारा की बस्तियों, दिलों में नहीं बुर्जुआ और निम्न बुर्जुआ के यहां ही उचित है। अम्बेडकर के बारे में सही व वैज्ञानिक चेतना सर्वहारा वर्ग में तब तक नहीं पैदा हो सकती जब तक वह मार्क्सवाद को नहीं अपनाता है। मार्क्सवाद को अपनाने के बाद ही वह समझ सकता था कि अम्बेडकर उसके वर्ग, समुदाय के प्रतिनिधि, नायक नहीं बल्कि बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि, नायक थे।

देश के दलित, सर्वहारा में यह चेतना अपने आप नहीं आ सकती है। यह काम कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का है कि वे अम्बेडकर की गैर सर्वहारा विचारधारा का पर्दाफाश करें और सर्वहारा वर्ग को कम्युनिस्ट चेतना से लैस करें। यह काम अच्छे व सही ढंग से होने की आज भी जरूरत जस की तस है परन्तु कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के कई ग्रुपों ने अपना वास्तविक काम करने के स्थान पर अम्बेडकर की देवमूर्ति को अपने कंधे पर उठा लिया है। वे वैसा क्यों कर रहे हैं? अम्बेडकर के प्रति वे क्यों मोहग्रस्त हैं? यही आगे की चर्चा का विषय है।

II

‘जाति प्रश्न के बारे में’ नामक ला.स. के लेख में हमने सी.पी.आई.(एम.एल) (पी.डब्ल्यू), सी.पी.आई. (एम.एल-जनशक्ति) और संधान नामक पत्रिका के दस्तावेजों और लेख से कई उद्धरण दिये थे जो इन संगठनों की अम्बेडकरवाद के बारे में गलत समझदारी को दिखलाते थे। सी.पी.आई. एम. एल. (पी.डब्ल्यू.) जो बाद में सी.पी.आई. (माओवादी) बन गयी, ने अम्बेडकर के बारे में अपनी अवस्थिति में शायद बदलाव कर लिया था क्योंकि उस तरह की अजीबोगरीब बात, कि अम्बेडकर का पहले का काल (1941 से पहले) जनपक्षधर जनवादी था और दूसरा काल शासक वर्गीय जनवाद विरोधी था, बाद में नहीं मिलती है।

सी.पी.आई. (एम.एल. जनशक्ति) ने कम्युनिस्ट आंदोलन की गलतियों को ठीक करने के नाम पर बहुजन समाज पार्टी जिसे ये निम्न पूंजीवादी जनवादी पार्टी मानते थे से सम्बन्ध विकसित करने की ‘पूरी कोशिश की’ परन्तु उन्हें मुंह की खानी पड़ी। कम्युनिस्ट आंदोलन की गलतियों को ठीक करने के नाम पर वे ऐसी गलती कर बैठे कि उन्हें अपनी इस बात की आत्मआलोचना करनी पड़ी कि उनके इस कदम से कम्युनिस्ट पातों में भ्रम और संदेह पैदा हुआ।

कम्युनिस्ट आंदोलन के अम्बेडकरवाद के बारे में ऐसे विश्लेषणों और महान प्रयोगों के अनुभव से कुछ कम्युनिस्ट क्रांतिकारी कुछ भी सबक नहीं निकालना चाहते हैं। वे भी कम्युनिस्ट आंदोलन की गलतियों को ठीक करने के लिए इतने आगे जा रहे हैं कि शायद अम्बेडकरवादी भी ये बातें नहीं कर सकते जो कम्युनिस्ट क्रांतिकारी कहने लगे हैं। एक कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन के साहित्य में अम्बेडकर के बारे में कहा गया है कि,

“अम्बेडकर ने अपने जीवन काल में तीन तरह की भूमिकाएं निभायी :

- (1) उत्पीड़ित जन समुदायों के एक योग्य हिमायती (Champion) के रूप में, वे मेहनतकश वर्गों विशेष तौर पर दलित समुदाय के साथ दृढ़तापूर्वक खड़े रहे, बहुतेरे राजनैतिक-वैचारिक संघर्ष किये, ढेरों किताबें लिखीं, प्रकाशमान (illuminating) भाषण दिये और शोषित जनता को जगाने के लिए कठोर मेहनत की। (2) एक जनपक्षधर विशेषकर अछूत समुदायों के नेता के रूप में, गोलमेज सम्मेलन में एक सदस्य के रूप में, श्रम मंत्री के रूप में, संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में, कानून मंत्री के रूप में उन्होंने कुछ

निश्चित आवश्यक समझौते भी शासकों के साथ किये। (3) एक दृष्टिवेत्ता (Visionary) के रूप में उन्होंने निडरतापूर्वक हिंदूवाद (Hinduism) के गैर जनवादी सार का भण्डाफोड़ किया।”

और फिर इस तरह से अम्बेडकर का मूल्यांकन किया जाता है,

‘अम्बेडकर ने जीवन पर्यन्त जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किया। उनका पक्ष था कि जाति व्यवस्था के नाश के लिए पूरे समाज के आर्थिक-राजनैतिक-सामाजिक ढांचे में बुनियादी परिवर्तन आना चाहिए। लेकिन उन्होंने यह पक्ष नहीं लिया कि ऐसे बुनियादी परिवर्तन केवल क्रांति के जरिये ही लाये जा सकते हैं। अम्बेडकर अपने शिक्षक (Mentor) जॉन डेवी से गहरे रूप में प्रभावित थे। उनकी सोच थी कि व्यवस्था में परिवर्तन क्रांतिकारी संघर्षों के बनिस्पत सुधारों और संसदीय संघर्षों के जरिये लाये जाने चाहिए। इस सीमा के बावजूद ब्राह्मण विरोधी, पूंजीवाद-विरोधी जनवादी आंदोलनों में अम्बेडकर का योगदान असीम था।’

अम्बेडकर का यह मूल्यांकन हतप्रभ करने वाला है। साम्राज्यवाद से संश्रय कायम करने वाले और साम्राज्यवाद के खिलाफ अकूत कुर्बानी देने वाले मजदूरों-किसानों व अन्य उत्पीड़ित समुदायों का फर्क यहां पूरे तौर पर धूमिल हो गया है। इन कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने अम्बेडकर को वे-वे उपाधियां दे डालीं, यदि अम्बेडकर जिंदा होते या तो इन उपाधियों को लेने में शर्मा जाते या इसे वे एक कम्युनिस्ट षड्यंत्र के तौर पर लेते और इसका खुलासा करने के लिए एक किताब लिख डालते। अजीब तमाशा है पूंजीवादी संविधान की डाफ्ट कमेटी की अध्यक्षता करने वाले व्यक्ति को ही पूंजीवाद विरोधी संघर्षों का पुरोधा घोषित कर दिया गया है। अम्बेडकर पूंजीवादी भारत के ‘भारत रत्न’ हैं भले ही उन्हें यह सम्मान थोड़े देर से मिला हो। अम्बेडकर ने सामाजिक बराबरी के लिए खासकर उसके सबसे खास भारतीय रूप जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किये थे और इसके लिए वे जो कुछ कर सकते थे वह उन्होंने किया। यहां उनका व्यावहारिकतावादी दर्शन और प्रणाली यह शिक्षा देती थी कि बेहिचक होकर उन उपकरणों का इस्तेमाल करो जो वर्तमान निजी सम्पत्ति पर आधारित समाज में बुनियादी परिवर्तन लाये बगैर सम्भव हो। वे कम्युनिस्टों के घोर विरोधी थे और भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का जात-पात की व्यवस्था के खिलाफ काफी हद तक स्पष्ट नीति रखने (खासकर 1930 में ‘कार्यवाही के लिए मंच’ (Joint platform of action) तथा 1948 में पार्टी की दूसरी कांग्रेस तथा 1951 के भारतीय क्रांति के कार्यक्रम आदि दस्तावेज) के बावजूद अम्बेडकर कम्युनिस्टों से संश्रय कायम करने को तैयार नहीं थे। कम्युनिस्टों की नीति और कार्यक्रम में आज पश्चदृष्टि से देखने पर ढेरों खामियां गिनायी जा सकती हैं खासकर तब जब हमारे पड़ोसी देश में माओ के नेतृत्व में सफल नयी जनवादी क्रांति का इतिहास साथ-साथ घटा हो, लेकिन कोई यह कह नहीं सकता है कि जाति प्रश्न की भारत के कम्युनिस्टों ने अनदेखी की।

डा. भीमराव अम्बेडकर चाहते तो जान डेवी के बजाय डा. सुन यात सेन से बहुत कुछ सीख सकते थे। वे भी अम्बेडकर के समकालीन थे। डा. सुनयात सेन, जो कि उत्कट जनवादी क्रांतिकारी थे, ने कम्युनिस्टों के साथ दृढ़ संश्रय की नींव रखी थी। उनका सोवियत संघ के प्रति दृढ़ मित्रता और सहयोग का रुख था। वे जानते थे कि शोषित-उत्पीड़ित जनों की मुक्ति में सोवियत संघ की बोल्शेविक पार्टी, उसके नेताओं और वहां के आम मजदूरों-किसानों की कितनी शानदार और प्रेरणा प्रदान करने वाली भूमिका रही थी। अम्बेडकर का कम्युनिस्टों, सोवियत संघ, समाजवाद और साम्यवाद के प्रति क्या रुख था यह सर्वविदित है।

ऐसे में सवाल उठता है कि भारत के कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारी और ग्रुप क्यों अम्बेडकर और दलित बुर्जुआ-निम्न बुर्जुआ आंदोलन के समक्ष आत्म समर्पण को तैयार हैं? क्यों वे इतिहास की गलतियों को ठीक करने के नाम पर एक से बढ़कर एक हास्यास्पद गलतियां कर रहे हैं। वे क्यों नहीं इतिहास की छानबीन करते समय वस्तुगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सहारा लेते हैं ऐसा क्यों हो रहा है कि वे जाति प्रश्न पर विचार करते हुए एक आद्योपांत बुर्जुआ सुधारवादी के तो प्रशंसक बन जाते हैं परन्तु मार्क्सवादी दर्शन और प्रणाली का प्रयोग कर इस संदर्भ में कम्युनिस्ट आंदोलन की समझ को और वस्तुगतता और वैज्ञानिक गहराई क्यों नहीं प्रदान कर रहे हैं वे क्यों दलित बुर्जुआ, निम्न बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के विचारों और फतवों को अपनी आत्मा में चिपकाये घूम रहे हैं?

ये बात सही है कि अम्बेडकर ने हिंदू धर्म की निर्मम आलोचना की परन्तु एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी होने के नाते हम जानते हैं कि धर्म शोषित-उत्पीड़ित जनता की बैसाखी है। अम्बेडकर हिंदू धर्म नामक बैसाखी को त्याज्य बताते हैं परन्तु उसके स्थान पर बौद्ध धर्म की बैसाखी लेकर हाजिर हो जाते हैं। कम्युनिस्ट जानते हैं कि उन भौतिक व आत्मिक आधारों को एक क्रांतिकारी ढंग से मिटा दिया जाये जिसमें उन्हें धर्म नामक बैसाखी की जरूरत पड़ती है तो भारत के करोड़ों शोषित-उत्पीड़ित धर्म के साथ वही व्यवहार करेंगे जो रूस व चीन में क्रांति के दौरान किया गया।

अम्बेडकर के लिए धर्म (अध्यात्म) मानवीय समाज के लिए बेहद आवश्यक तत्व है और इसके बगैर मनुष्य का जीवन पशुवत हो जायेगा इसलिए काफी ऊहा-पोह के बाद उन्होंने बौद्ध धर्म को आधुनिक समाज की आध्यात्मिक जरूरतों के लिए आवश्यक घोषित कर दिया। ऐसे में अब हमारे युग के ये बेचारे कम्युनिस्ट क्या करें? उत्तराखंड के आम जनों में प्रचलित एक कहावत है “झूठ बोलू तो बाप कुत्ता खाय, सच बोलू तो मां मारी जाय” ऐसे कम्युनिस्टों पर सटीक बैठती है। दकियानूसी, ‘जनवादी विचारों’ का पिच्छलगू बनने पर ऐसी ही दुविधा खड़ी होनी है।

करोड़ों-करोड़ सर्वहाराओं के दिल और दिमाग को अम्बेडकर की देवमूर्ति को कन्धे पर उठाकर, उसकी आड़ में नहीं जीता जा सकता है। दलितवाद, अम्बेडकरवाद के बुर्जुआ, निम्न बुर्जुआ अंतर्धर्म की निर्मम आलोचना के जरिये और सही सर्वहारा विचारधारा और

रणनीति-कार्यनीति के जरिये ही लाखों करोड़ों सर्वहारा को क्रांति की ओर, वास्तविक मुक्ति की ओर उन्मुख किया जा सकता है। यह सब कार्य धैर्यपूर्वक, जाति प्रश्न के हर पेंचों-खम का सही वैज्ञानिक विश्लेषण कर किया जाना चाहिए। और इससे भी ज्यादा वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ सर्वहारा वर्ग को क्रांतिकारी संघर्षों में उतार कर ही उनके दिल-दिमाग को जीता जा सकता है।

यह बात सही है कि हमारे देश में जाति व्यवस्था की जड़ें जितनी गहरी रही हैं उसके लिए भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को क्रांति के पहले भी बहुत काम करना होगा और क्रांति के बाद भी। समाजवादी क्रांति के सम्पन्न होने के बाद लम्बे समय तक समाज में जाति व्यवस्था की कुम्भृतियों को मिटाने के लिए विशेष समाजवादी शिक्षा अभियान चलाने होंगे। हो सकता है कि देश में समाजवादी सत्ता को बनाये रखने के लिए समय-समय पर आयोजित होने वाली महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांतियों में यह विषय एक लम्बे समय तक बना रहे। इस रूप में हम देखें तो हमारे देश में जाति समस्या के पूर्ण समाधान में ऐतिहासिक रूप से लम्बा कालखण्ड लग सकता है। लम्बे कालखण्ड के बाद ही ऐसी पीढ़ियां सामने आ सकती हैं कि जिन के ऊपर जाति व्यवस्था का चिह्न शेष नहीं बचा होगा।

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को मार्क्सवाद की सही समझ से प्रस्थान करना चाहिए और अम्बेडकर जैसे के प्रति मोहग्रस्त होने के स्थान पर उनके दिल में एक बुर्जुआ सुधारवादी के प्रति घोर आलोचनात्मक रुख होना चाहिए।

III

कम्युनिस्टों के लिए विचारधारात्मक संघर्ष का क्या महत्व है, इस बारे में कम्युनिस्ट साहित्य भरा पड़ा है। हमारे देश में आज के घोर दक्षिणपंथी दौर में विचारधारा का क्या महत्व है इस बारे में हम लेनिन की चंद पंक्तियां “क्या करें?” से उद्धृत करेंगे। लेनिन ने कहा था:

“... .. इसलिए **केवल ये रास्ते ही** रह जाते हैं : या तो बुर्जुआ विचारधारा को चुना जाये या समाजवादी विचारधारा को। बीच का कोई रास्ता नहीं है (क्योंकि मानव जाति ने कोई “तीसरी” विचारधारा पैदा नहीं की है, और इसके अलावा भी जो समाज वर्ग विरोधों के कारण बंटा हुआ है, उसमें कोई गैर वर्गीय या वर्गोपरि विचारधारा कभी नहीं हो सकती)। अतएव समाजवादी विचारधारा के महत्व को **किसी भी** तरह कम करके आंकने, उससे जरा भी मुंह मोड़ने का मतलब बुर्जुआ विचारधारा को मजबूत करना होता है। (लेनिन, क्या करें, प्रगति प्रकाशन मास्को, पृष्ठ-58, पैरा-1, जोर मूल में)

हम इस बात की बिलकुल भी आवश्यकता इस उद्धरण के बाद नहीं समझते हैं कि कम्युनिस्टों को बताया जाय कि विचारधारा से थोड़े से भी विचलन का अर्थ क्या होता है।

